शंकराचार्य

लेखक परिचय

श्रीधर पराड़कर

मध्यप्रदेश के ग्वालियर निवासी श्रीधर पराड़कर का जन्म 15 मार्च, 1954 को हुआ। इनके पिताजी का नाम गोविन्द राव पराड़कर और माता का नाम श्रीमती इन्दिरा बाई पराड़कर है। वाणिज्य स्नातकोत्तर की शिक्षा प्राप्त कर श्रीधर पराड़कर ने एकाउंटेंट जनरल कार्यालय में ऑडिटर के रूप में शासकीय सेवा प्रारंभ की। श्रीधर ने 1986 में शासकीय सेवा से निवृत्ति लेकर समाजकार्य और साहित्य साधना में प्रवृत्त हुए।

श्रीधर ने इंग्लैंड, श्रीलंका आदि देशों की यात्रा के साथ–साथ भारत में भी साहित्य संवर्धन यात्राएँ की।

श्रीधर की प्रमुख पुस्तके हैं '1857 के प्रतिसाद', 'अद्‌भुत संत स्वामी रामतीर्थ', 'अप्रतिम क्रांतिदृष्टा भगत सिंह', 'राष्ट्रसंत तुकड़ो जी', 'राष्ट्रनिष्ठ खण्डोबल्लाल', 'सिद्धयोगी उत्तम स्वामी'।

उन्होंने दत्तोपंत ठेगंड़ी की पुस्तक 'सामाजिक क्रांति की यात्रा और डॉ. अम्बेडकर का मराठी से हिंदी' में अनुवाद किया।

श्रीधर पराड़कर को वर्ष 2015 का केन्द्रीय हिंदी संस्थान, (मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार) द्वारा भारतीय विद्या (इन्डोलॉजी) में लेखन के लिये विवेकानन्द पुरुस्कार प्रदान किया गया।

केन्द्रीय भाव – लेखक श्रीधर पराड़कर ने 'शंकराचार्य' पाठ को जीवनी विधा में सहेजकर एक मार्मिक, प्रेरक एवं प्रभावशाली रचना प्रस्तुत की है, जो सहज ही पाठकों को प्रभावित करती है। प्रस्तुत आलेख आदिशंकराचार्य और उनके जीवन–दर्शन का प्रतिबिम्ब है।

शंकर बचपन से मेधावी थे। उनकी इस विलक्षण प्रतिभा से ऐसा प्रतीत होता था कि मानो वे शीघ्र ही 'होनहार विरवान के होत चीकने पात' वाली कहावत को चरितार्थ करेंगे। माता–पिता ने उन्हें अध्ययन के लिए गुरुकुल भेजा। यहाँ भी शंकर ने 'अल्पकाल बहु विद्या पाई' जैसी उक्ति को चरितार्थ किया। उनके सम्पर्क में आने वाले उनकी प्रतिभा और तेजस्वी व्यक्तित्व को देखते ही हतप्रभ हो जाते थे। शंकर को पिताश्री का साया अधिक समय तक नहीं मिल सका। बालक शंकर इस घटना से बहुत आहत हुए। वे नश्वर संसार को देखकर, समाज जागरण के लिए संन्यास के मार्ग पर चल पड़े तथा उन्होंने गोविन्दपादाचार्य को अपना गुरु बनाया।

शंकर ने ओंकारेश्वर, केदारनाथ बद्रीनाथ, वाराणसी जैसे तीर्थ स्थानों का भ्रमण किया। शास्त्रार्थ में उन्होंने मण्डन मिश्र और उनकी पत्नी उभय भारती को पराजित किया। वे शंकर से शंकराचार्य हो गए और उनकी प्रशंसा होने लगी। उन्होंने अद्वैतमत की श्रेष्ठता सिद्ध की। सम्पूर्ण भारत को एकता के सूत्र में बाँधने के लिए चारों दिशाओं में चार मठों की स्थापना की। बत्तीस वर्ष की अल्पायु में ही वे अपना ज्ञान–आलोक सर्वत्र प्रकाशित करते हुए महासमाधि में लीन हो गए।

भारत के हरित शस्यश्यामल प्रदेश केरल में पूर्णा नदी के तट पर बसा ग्राम कालड़ी है। ग्राम में अनादिकाल से वेद–वेदान्त के प्रख्यात विद्वानों का निवास स्थान रहा है। वेदों के धुरंधर विद्वान विद्याराज नंबूदिरी भी यहीं निवास करते थे। उनके ही पदचिह्नों पर चलने वाले उनके पुत्र वेदों के अध्ययन व अध्यापन में रत धर्मनिष्ठ शिवगुरु वैसे तो सुखी व संतुष्ट थे, परन्तु वे निःसंतान थे। संतान प्राप्ति के लिए वृषाचलेश्वर तीर्थ जाकर उन्होंने कठोर वृत किया। पुत्र प्राप्ति पर शिव की कृपा मानते हुए उसका नाम शंकर रखा।

शंकर बचपन से ही मेधावी थे। उनकी प्रतिभा धीरे–धीरे प्रकट होने लगी। आर्यम्बा पुत्र की बुद्धिमत्ता की बातें सुनती तो उसका हृदय आह्लाद से परिपूर्ण हो जाता। इसकी प्रतीति तब अधिक हुई जब 5 वर्ष का होने पर उन्हें वेदाध्ययन के लिये गुरुकुल भेजा गया। शंकर श्रुतिधर थे। एक बार बताने पर वे पाठ समझ लेते थे।

उन दिनों विद्यार्थी को भिक्षा माँग कर गुरुकुल की व्यवस्था में हाथ बंटाना होता था। एक दिन ब्रह्मचारी शंकर भिक्षा के लिए

निकले और एक झोपड़ी के सामने उन्होंने **''भवति भिक्षां देहि''** की पुकार लगायी। गृहिणी ब्रह्मचारी को अपने द्वार पर देख कर प्रसन्न हुई और चिंतातुर भी। उस दिन भिक्षा में देने के लिए टोकरी में केवल एक सूखा आंवला था। गृहस्थ के घर से ब्रह्मचारी खाली हाथ न लौट जाये इसलिए दीनतापूर्वक उसने सूखा आंवला ब्रह्मचारी के पात्र में रख दिया। भिक्षा पाकर शंकर को उस घर की दयनीय अवस्था का ज्ञान हो गया। उन्होंने महालक्ष्मी से सम्पन्नता के लिए प्रार्थना की। कहते हैं कि इसके बाद वह परिवार धन–धान्य से सम्पन्न हो गया। यह प्रार्थना कनकधारा स्तोत्र के रूप में प्रसिद्ध है।

गुरुकुल में शिक्षा प्राप्त करते हुए शंकर जान चुके थे कि उन्होंने जिन वेदों का अध्ययन किया है समाज में उसके अनुसार आचरण नहीं हो रहा है। केवल वेद अध्ययन करने मात्र से कुछ नहीं होगा। वेदों के प्रति समाज की अश्रद्धा को दूर करना होगा। शंकर अभी गुरुकुल में ही थे कि पिता शिवगुरु का देहान्त हो गया। शंकर बहुत दुखी हुए। पिता की मृत्यु से उनके मन में विचार आया कि जब एक दिन यह नश्वर शरीर छूटना ही है तब कीडों–मकोडों की भांति सामान्य जीवन क्यों जिया जाये? किसी महान ध्येय को लेकर सत्य के मार्ग पर चला जाये। परिणामस्वरूप सांसारिक बंधनों में न बंधते हुए समाज जागरण के लिये संन्यास मार्ग पर चलने का निश्चय किया।

शिक्षा प्राप्ति पश्चात् पुत्र को घर आया देख कर माँ अति प्रसन्न हुई। प्रत्येक माँ की तरह आर्यम्बा की स्वाभाविक इच्छा थी कि शंकर का विवाह हो। लेकिन शंकर तो संन्यास ग्रहण करना चाहते थे और इस संकल्प की पूर्ति के लिए वे चिंतित भी थे पर माँ की आज्ञा के बिना संन्यास कैसे लेते?

एक दिन स्नानादि के लिए शंकर अपनी माँ के साथ पूर्णा नदी गये हुए थे। माँ स्नान कर तट पर खड़ी थीं कि उसने शंकर की चीख सुनी। माँ ने पलट कर देखा। शंकर कमर तक पानी में थे और ऐसा प्रतीत हो रहा था कि उसे कोई अंदर खींच रहा है। शंकर ने वेदना भरे स्वर में माँ से कहा, माँ मगर ने मेरा पैर पकड़ लिया है और वह मुझे पानी में खींच रहा है। लगता है भगवान मुझे आपसे दूर कर रहे हैं। आप मुझे संन्यास ग्रहण करने की आज्ञा दें। संभव है मगर मेरा पैर छोड़ दे। माँ ने सोचा पुत्र को पूर्ण रूप से खोने से अच्छा है कि उसे संन्यास ग्रहण करने दिया जाये। कम से कम जीवित तो रहेगा और आश्चर्य, यह हुआ कि माँ द्वारा संन्यास ग्रहण करने की आज्ञा देते ही मगर ने शंकर का पैर छोड़ दिया और दोनों माँ बेटे सकुशल घर आ गए।

शंकर ने विधिवत संन्यास ग्रहण किया और वे ऐसे संन्यासी बनना चाहते थे, जिसमें संन्यास का अर्थ संसार को छोड़ कर वन में तपस्या करना नहीं अपितु देश व धर्म के लिए कर्म करना था जो मनुष्य को कर्मबंधन में नहीं बाँधते। अन्ततः संन्यासी शंकर माँ की आज्ञा पाकर योग्य गुरु की खोज में देशाटन पर निकल गए और जाते हुये माँ के चाहने पर माँ को यह आश्वस्त कर गए कि मैं तुम्हारे अंतिम समय में तुम्हारे पास उपस्थित रहकर सेवा करूँगा।

शंकर देश की परिस्थितियों का अवलोकन करते हुए उत्तर दिशा में चल पड़े और अमरकंटक पहुँचे। वहाँ वे नर्मदा का महत्व जानकर नर्मदा यात्रियों के साथ पैदल यात्रा करते हुए ओंकारेश्वर पहुँचे। ज्योतिर्लिंग के दर्शन कर वे माँ नर्मदा के घाट पर बैठे थे कि जानकारी मिली समीप ही एक गुफा में गौड़पादाचार्य के शिष्य गोविन्दपाद तपस्यारत हैं। समाधिमग्न गोविन्दपादाचार्य के दर्शन से शंकर को अद्‌भुत शांति मिली। समाधि टूटने पर योगाचार्य ने बाल संन्यासी पर दृष्टिक्षेप किया। उन्होंने शंकर से पूछा 'वत्स तुम कौन हो?' अपना परिचय देतु हुए शंकर ने उत्तर दिया–

न भूमिर्न तोयं न तेजो न खं नेन्द्रियं वा न तेषां समूहः।
अनैकान्तिकत्वात्सुषुप्त्येक सिद्धस्तदेकाऽवशिष्टः शिवः।।

अर्थात्– 'मैं पृथ्वी नहीं हूँ, जल भी नहीं, तेज भी नहीं, न आकाश, न कोई इन्द्रिय अथवा उनका समूह भी। मैं तो इन सबसे अवशिष्ट केवल जो परमतत्व शिव है, वहीं हूँ।' यह शंकर का परिचय नहीं अद्वैत का सार ही था।

गोविन्दपाद ने शंकर की असाधारण प्रतिभा को पहचाना और अपना शिष्य स्वीकार कर विधिवत संन्यास की दीक्षा दी। शंकर ने गुरु से ब्रह्मसूत्र, महावाक्य चतुष्टय आदि की गहन शिक्षा ली। यहीं पर रहते हुए उन्होंने 'प्रस्थान त्रयी' भाष्य तथा नर्मदा में पानी का स्तर बढ़ने के परिणाम स्वरूप उसके विशाल रूप को देखकर नर्मदा की स्तुति करते हुए 'नर्मदाष्टकम्' स्त्रोत की रचना की। इसलिये गुरु ने बड़ी सावधानीपूर्वक वेदान्त धर्म की

सांगोपांग शिक्षा के साथ अपने व्यवहार से शंकर को ऐसे संस्कार दिये की वह धर्म प्रचार के योग्य बन सके।

समाज जागरण के कार्य की अनुमति देने के पूर्व गोविन्दपाद शंकर को अपने गुरु गौड़पादाचार्य से मिलाने बदरीनाथ ले गये। परमगुरु को भी शंकर में अलौकिक प्रतिभा भासित हुई। उससे भी अधिक उन्होंने देखा कि शंकर के पास अपने देश और धर्म की दशा को देख कर रोने वाला हृदय भी है तथा इस दशा को दूर करने की एक अत्यन्त प्रखर आकांक्षा भी दिखाई दी। उन्होंने शंकर को अपने पास चार वर्ष रख कर स्वयं शिक्षा दी। यहाँ रह कर शंकर अनेक ग्रंथों की रचना की और उनके परमगुरु ने आज्ञा दी कि तुम देशाटन कर अद्वैत का प्रचार करो।

वे यात्रा की तैयारी कर ही रहे थे कि गाँव से एक मित्र माँ की अस्वस्थता का संदेश लेकर आया। शंकर समाचार सुनकर अविलंब कालड़ी के लिए रवाना हुये। कालड़ी पहुँचकर शंकर ने माँ के दर्शन किये। वहाँ रूककर माँ की सेवा–सुश्रुषा में लगे रहे। अन्ततः कुछ दिनों बाद माँ का स्वर्गवास हो गया। यह जानते हुए भी कि वे सन्यासी हैं और संन्यासी का कोई अपना नहीं होता उन्होने माँ का अन्तिम संस्कार किया गॉव वालों के आपत्ति करने पर उन्होने कहा कि नियम मनुष्य की सुविधा के लिए होते हैं। मनुष्य उनका दास नहीं होता।

संपूर्ण शास्त्रों के अध्ययन के साथ वे अब तक देश की परिस्थिति का अध्ययन कर चुके थे। उन्होंने देखा कि संपूर्ण देश में दो प्रकार के मत–मतान्तर हैं। इसलिए उन्होंने निश्चय किया कि जो व्यक्ति राष्ट्र कल्याण की भावना से कार्य कर रहें हैं उनको संगठित कर एकसूत्र में बाँधा जाये क्योंकि सांस्कृतिक एकता होने पर सभी कुछ संभव है। इस कार्य को उन्होंने वाराणसी से प्रारंभ किया। यहाँ पर उनके ग्रंथों की चर्चा होने लगी। विद्वान् पंडित इनकी विद्वत्ता से प्रभावित हुए। अब वह केवल शंकर नहीं शंकराचार्य के रूप में प्रतिष्ठित हो गये। विद्वानों से शास्त्रार्थ, चर्चा का क्रम शुरू हुआ। लोग उनके मत से सहमत होने लगे। वाराणसी में उनका प्रत्येक क्षण ध्येयपूर्ति का क्षेत्र तैयार करने में व्यतीत होता था। इस समय उनकी आयु मात्र 12 वर्ष की थी और उनका यश चारों ओर फैल रहा था।

वाराणसी में एक दिन वे अपने शिष्यों के साथ गंगा स्नान को जा रहे थे। मार्ग में एक चांडाल अपनी पत्नी व चार कुत्तों के साथ सामने से आ रहा था। उसे देखते ही शिष्यों ने स्पर्श न हो इस उद्देश्य से चांडाल को कहा कि एक ओर हट जाओ। यह सुन कर चांडाल परिवार सहित वहीं खड़ा हो गया। उसने पूछा– 'महात्मन्' आप किसे दूर हटने की आज्ञा दे रहे हैं? मेरे शरीर को या मेरी आत्मा को? शरीर तो नश्वर है, आत्मा सर्वव्यापी है। आप ही कहते हैं कि ब्राह्मण व चांडाल में कोई अंतर नहीं है। आचार्य! फिर यह भेदभाव कैसा? आचार्य शांति से चांडाल की बात सुनते रहे। उनको अपने शिष्य की भूल पर बड़ा पश्चाताप हुआ। उसी समय उन्होंने 'मनीषापंचक' नाम से विख्यात पाँच श्लोकों की रचना की। उस चांडाल को अपना गुरु कहा। कितना निरहंकार तथा विनम्र था शंकराचार्य का स्वाभाव। छोटे से छोटे को भी वे अपनाने को तैयार रहते थे, उससे सीख लेते थे तथा उसे आदर देते थे।

वाराणसी के बाद शंकराचार्य तपस्वियों के दल के साथ दिग्विजय करने हेतु गंगा के किनारे उत्तर की ओर बढ़े। प्रयाग, प्रतिष्ठानपुरी (झूसी) के बाद वे कुमारिल भट्ट से भेंट करने निकले। वस्तुतः वाराणसी में उनका रूकने का उद्देश्य कुमारिल भट्ट से ब्रह्मसूत्र के अपने भाष्य पर मन्तव्य लिखवाना और शास्त्रार्थ करना था किन्तु कुमारिल भट्ट ने शंकराचार्य से कहा कि तुम माहिष्मती (महेश्वर–म.प्र.) निवासी मेरे शिष्य मंडन मिश्र से शास्त्रार्थ करो। परिणामतः शंकराचार्य माहिष्मती आये।

महेश्वर पहुँचकर आचार्य शंकर ने पनिहारिन स्त्रियों से मंडन मिश्र के निवास के बारे में पूछा। उन स्त्रियों ने बताया कि जिस घर के दरवाजे पर पिंजड़े में बंद शुक–सारिका संस्कृत मंत्र बोल रहे हों, वही मंडन मिश्र का घर है। यह सुनकर शंकराचार्य आगे बढ़े। उन्होंने देखा कि एक घर के द्वार पर पिंजड़े में बंद शुक **''स्वतः प्रमाणम् परतः प्रमाणम्''** श्लोक बोल रहे हैं। वे समझ गये कि यही मंडन मिश्र का घर है। आचार्य ने कुमारिल भट्ट के नाम का उल्लेख करते हुए शास्त्रार्थ की इच्छा प्रकट की। अगले दिन मण्डन मिश्र ने उन्हें शास्त्रार्थ के लिये बुलाया।

शास्त्रार्थ प्रारंभ हुआ और जय–पराजय का निर्णय करने का भार मंडन मिश्र की विदुषी पत्नी उभय भारती को सौंपा गया। यह भी तय हुआ कि यदि मंडन मिश्र पराजित होंगे तो संन्यास स्वीकार कर लेंगे अन्यथा शंकराचार्य को गृहस्थाश्रम स्वीकार करना होगा।

शास्त्रार्थ लगातार तीन दिन तक चलता रहा। शंकराचार्य ने मंडन मिश्र के सभी प्रश्नों के उत्तर देकर समाधान कर दिया। शास्त्रार्थ का निर्णय घोषित करने से पूर्व उभय भारती ने भी शंकराचार्य से विशेष शास्त्रार्थ किया किन्तु वह भी उनसे पराजित हो गयी और प्रतिज्ञा अनुसार दोनों ने आचार्य शंकर से दीक्षा ली। शंकराचार्य ने दीक्षा के समय मंडन मिश्र को उपदेश दिया जो 'तत्वोपदेश' नामक लघु ग्रंथ में संग्रहीत है। दीक्षा के बाद मंडन मिश्र का नाम सुरेश्वराचार्य हो गया और उन्हें कांची पीठ से सम्बद्ध शृंगेरी मठ का प्रथम अधिपति नियुक्त किया। उज्जैन प्रवास के समय शंकराचार्य ने कापालिकों के अमर्यादित आचरण को देखकर उनसे शास्त्रार्थ कर उन्हें पराजित किया।

देशाटन करते हुए शंकराचार्य ने प्रमुख तीर्थों के दर्शन किये तथा वहाँ के विद्वानों के सामने अद्वैत मत की श्रेष्ठता सिद्ध कर उन्हें अपने अनुगत किया। कृष्णा व तुंगभद्रा के संगम पर स्थित श्रीशैलम् ज्योतिर्लिंग पहुँचने पर वैष्णव, शैव, शाक्त, कापालिक मतानुयायी के समूह उनसे वाद–विवाद करने एकत्र हुए। आचार्य ने अपने शिष्य सुरेश्वराचार्य एवं पद्मपाद को उनसे चर्चा के लिये नियुक्त किया। उन्होंने मठाधीशों की शंकाओं का समाधान करते हुए अद्वैत की विजय पताका फहरायी।

अब तक शंकराचार्य को पर्याप्त ख्याति व मान्यता प्राप्त हो चुकी थी। उनके शिष्यों की संख्या सहस्रों में थी। मतानुयायी तो अगणित थे, पर आचार्य को इससे संतोष कहाँ? वे तो संपूर्ण भारतवर्ष को एकता के सूत्र में बांधना चाहते थे। समाज को अद्वैत का पाठ पढ़ाना चाहते थे। उन्होंने वेदान्त और भक्ति का समन्वय किया। उन्होंने किसी भी देवता का खण्डन नहीं किया। लोगों की श्रद्धा को नष्ट न करते हुए केवल श्रद्धा का केन्द्र बदल दिया।

शंकराचार्य ने देश की चारों दिशाओं में चार मठों काञ्ची, बद्रीकाश्रम, जगन्नाथपुरी, शारदमठ की स्थापना की। वेदों के प्रचार–प्रसार के निमित्त प्रत्येक मठ को एक वेद के अध्ययन–अध्यापन का दायित्व दिया। प्रत्येक मठ का एक प्रमुख देवी–देवता निश्चित किया। संन्यासियों की प्रचलित धारा को दस भागों में विभक्त कर उनके कर्तव्य कर्म निश्चित किये। केवल बत्तीस वर्ष के जीवन में अध्ययन, अध्यापन, शास्त्रार्थ, ग्रंथों की रचना, भक्ति स्तोत्रों की रचना, पैदल देशाटन, देश को एकता के सूत्र में बांधने के लिए मठों की स्थापना जैसा अद्‌भुत कार्य किया।

अन्त में अपने लक्ष्य की पूर्ति करते हुए वे हिमालय के केदारनाथ पहुँचे और अपने शिष्यों को अंतिम उपदेश देते हुए महासमाधि में लीन हो गये।

अभ्यास

अति लघुउत्तरीय प्रश्न–

1. शंकर का जन्म कहाँ हुआ था?
2. शंकर के माता–पिता का नाम बताइए?
3. ऊंकारेश्वर में शंकर ने किससे दीक्षा ली?
4. 'तत्वोपदेश' नामक, ग्रन्थ में किसके उपदेश संग्रहीत हैं?
5. शंकराचार्य और मण्डन मिश्र के बीच हुये शास्त्रार्थ का निर्णायक कौन था?

लघु उत्तरीय प्रश्न–

1. कनकधारा स्तोत्र किसके लिए और क्यों प्रसिद्ध है?
2. शंकर को संन्यास ग्रहण करने की आज्ञा, माँ से कब, किस स्थिति में प्राप्त हुई?
3. अद्वैत का सार लिखिए?
4. शंकर ने 'मनीषपंचक' नाम से विख्यात पाँच श्लोकों की रचना किन परिस्थिति में की थी?
5. शंकर ने किस विद्वान और विदुषी (पति–पत्नी) से शास्त्रार्थ किया था? उसका क्या परिणाम हुआ?

दीर्घउत्तरीय प्रश्न

1. शंकर ने संन्यास मार्ग अपनाने का निश्चय क्यों किया?
2. शंकराचार्य द्वारा स्थापित मठ़ो के नाम लिखिए।
3. गोविन्दपाद कौन थे? उन्होंने किसे विधिवत संन्यास की दीक्षा दी थी?
4. श्रृंगेरीमठ का प्रथम आचार्य किसे नियुक्त किया और क्यों?
5. शंकर के चरित्र की विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।

भाषा अध्ययन

1. निम्नलिखित शब्दों में से उपसर्ग और प्रत्यय बाँटकर लिखिए–
   असाधारण, दयनीय, अश्रद्धा, विनम्र, प्रखर, निश्चयी, सांसारिक, अलौकिक।
2. निम्नलिखित पदों में समास पहचान कर लिखिए–
   पति –पत्नी, जय–पराजय, धीरे–धीरे
3. दिए गए शब्दों का संधि–विच्छेद कर संधि का नाम लिखि–
   वेदाध्ययन, संन्यास, चिंतातुर, संकल्प
4. निम्नलिखित मुहावरों का वाक्यों में प्रयोग कीजिए–
   हाथ बंटाना, खाली हाथ न लौटना, महा समाधि में लीन होना
5. निम्नलिखित वाक्यांशों के लिए दिए गए विकल्पों में से सही एक शब्द लिखिए–

   अ. जो क्रम के अनुसार हो–
   1. यथाक्रम 2. क्रमबद्ध 3. सूची 4. तालिका

   ब. आदि से अन्त तक–
   1. अन्तिम 2. आद्यक्षर 3. आद्यन्त्र 4. आद्यादस्तक

   स. जो छिपाने योग्य है–
   1. छिद्र 2. गलती 3. चरित्र 4. गोपनीय

   द. जो किए गए उपकार को नहीं मानता–
   1. कृतज्ञ 2. कृतघ्न 3. उपकारी 4. अनुपकारी

योग्यता विस्तार

1. शंकराचार्य द्वारा स्थापित चार–मठों के नाम तथा उनसे संबंध वेदों की जानकारी चर्चा कर अपनी नोट बुक में लिखिए।
2. शंकराचार्य से संबंधित पुस्तकें पुस्तकालय से लेकर पढ़िए।
3. मण्डन मिश्र, गोविन्दपाद की जानकारी अपने शिक्षक जी से चर्चा करके नोट–बुक में लिखिए।
4. अमरकण्टक, ओंकारेश्वर, महेश्वर, उज्जैन, केदारनाथ, बद्रीनाथ के विषय में कक्षा में चर्चा कीजिए।
5. पुस्तकालय से अन्य महापुरुषों की पुस्तकें लेकर पढ़िये और चर्चा कीजिए।

शब्दार्थ

हरित–हरा। **धुरंधर**– उत्तम गुणें वाला। **सांगोपांग**–पूर्ण, अंगव उपांगो युक्त। **कृतकार्य**– सफल मनोरत, जो अपना काम कर चुका हो।

***